P: ISSN NO.: 2321-290X RNI : UPBIL/2013/55327 VOL-4* ISSUE-8* April- 2017
E: ISSN NO.: 2349-980X **Shrinkhla Ek Shodhparak Vaicharik Patrika**

अधुनातन हिन्दी कहानी और उपन्यास साहित्य में स्त्री विमर्श 1990 का दशक आज के संदर्भ में

अमित शुक्ल
सहायक प्राध्यापक,
हिन्दी विभाग,
शा.ठाकुर रणमत सिंह महाविद्यालय,
रीवा, म.प्र.

सारांश

अधुनातन वो है जो वर्तमान संदर्भ में मौजूद और सार्थक हो, सत्य ये है कि प्रत्येक युग का साहित्य अधुनातन है। 21वीं सदी के वर्तमान परिदृश्य में पुरूष और महिला लेखकों ने अपनी धारदार कलम से सामाजिक, राजनैतिक , आर्थिक आदि अनेक पहलुओं को अपने कहानी और उपन्यास के माध्यम से उकेरा ही नहीं बल्कि जिया भी है। स्त्री विमर्श एक वैश्विक विचारधारा है, जिसकी शुरूआत 19वीं सदी के मध्य से अमेंरिका, रूस और फ्रांस में हो चुकी थी। अधुनातन हिन्दी साहित्य में कहानी व उपन्यास में आज स्त्री विमर्श न सिर्फ साहित्यिक विमर्श है बल्कि अनेक मायनो में वो एक सामाजिक, राजनैतिक आंदोलन व बौद्धिक सोच बन चुका है।

1990 के पश्चात हिन्दी उपन्यास और कहानी साहित्य पर दृष्टि करें तो जहां पुरूषों के साथ– साथ महिला लेखन की भागीदारी भी अत्यधिक रही। लेखन में महिला उपन्यासकारों की भागीदारी से तीव्र गति से परिर्वन आया। देखते ही देखते हिन्दी उपन्यास जगत में सर्वश्रेष्ठ उपन्यास महिलाओं की कलम से उभरने लगे। आज का कथा साहित्य मानवीय संबधों के बदलाव को दर्शाता है। एक तरफ स्त्री का अकेले स्वावलंबी जीवन बिताने का साहस करना और दूसरी तरफ कुछ का बिना सोचे समझे अपना सर्वस्व दांव पर लगाना भी पारिवारिक विघटन, स्त्री का आर्थिक स्वावलंबन और दफ्तर की नौकरी से लेकर इंजीनियर, डाक्टर, और राजनैतिक नेतृत्व तक का वर्तमान हिन्दी कथा साहित्य विमर्श में विभिन्न पहलुओं की झलक दिखायी देती है।

मुख्य शब्द : अधुनातन, स्त्री विमर्श, वैश्विक विचारधारा, उपन्यास, कहानी, आधुनिक परिवेश, नारी अस्मिता, आत्मविश्वास, परिपक्वता

प्रस्तावना

साहित्य के क्षेत्र में अधुनातन शब्द को सार्थक प्रयोग के अभाव में अक्सर कठिनाई का सामना करना पड़ता है। देखा जाए तो अर्थ विज्ञान के अनुसार प्रत्येक शब्द का अर्थ होता है परन्तु ये अर्थ हमेंशा एक से नहीं रहते, वह परिवर्तित होते रहते हैं। अर्थ परिवर्तन को अर्थ विकास भी कहा जा सकता है। अधुनातन वो है जो वर्तमान संदर्भ में मौजूद और सार्थक हो। सत्य ये है कि प्रत्येक युग का साहित्य अधुनातन है। युग को चित्रित करने वाला साहित्य ही अधुनातन है। पर वर्तमान समय में अधुनातन का अर्थ युगीन संदर्भ से आगे है। अधुनातन हिन्दी उपन्यास और कहानी साहित्य अनेक विधाओं में से सर्वाधिक लोकप्रिय विधा है। वों जन –जन से जुड़ा समाज का यथार्थ दस्तावेज है। 21 वीं सदी के वर्तमान परिदृश्य में पुरूष और महिला लेखकों ने अपनी धारदार कलम से सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक आदि अनेक पहलुओं को अपने उपन्यास और कहानी के माध्यम से उकेरा ही नहीं बल्कि जिया भी है। आज का स्त्री विमर्श अधुनातन कथा साहित्य का सर्वश्रेष्ठ विमर्श है। वर्तमान समय अनेक दृष्टियों से अत्यंत महत्वपूर्ण समय है। साहित्य और मानव दोनो के लिए। जहां आज सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक रूप से परिवर्तन सांस्कृतिक अवमूल्यन के रूप में दिखाई दे रहा है, वही दूसरी ओर विश्व संस्कृति के विस्तार रूप। एक ओर विश्व बाजार की चकाचौंध, सैनसेक्स के उछले–गिरते फिर उछलते ग्राफ, विकास के नित नूतन राग और दूसरी ओर विश्व बाजार को उपलब्ध कराने के लिए भूमि अधिग्रहण से उत्पन्न लोक जनमानस की डूबती संस्कृति करूप में, इस प्रकार 21वी सदी के दो रूप उभर कर सामने दृष्टिगत हो रहे हैं। एक तरफ पूंजीवादी औपनिवेशिक वर्चस्व की समृद्धि के रूप में और दूसरी ओर परम्परागत क्षेत्रीय व्यवसाय की लुप्तता के रूप में जो नये सिरे से आर्थिक नीतियों पर प्रश्न खड़ा कर रहा है। हिन्दी साहित्य में स्त्री, दलित एवं आदिवासी विमर्श, 1990 से पहले ही अपनी उपस्थिति दर्ज कर चुके थे। फिर भी भारत

आए राजनैतिक एवं सामाजिक परिवर्तन, आर्थिक उदारीकरण और वैश्वीकरण ने हिन्दी साहित्यिक विमर्श की विभिन्न विधाओं के आधुनिकोत्तर विकास में उत्प्रेरक का कार्य किया। इसी दौर में समाज के तीनो वर्गों स्त्री, दलित एवं आदिवासी से संबधित साहित्य सशक्त और शिद्दता के साथ पहले से कहीं अधिक संख्या में सामने आया है, न सिर्फ शहरी समाज से बल्कि ग्रामीण समाज से भी।[1]

स्त्री विमर्श एक वैश्विक विचारधारा है, जिसकी शुरूआत 19वीं सदी के मध्य से अमेंरिका, रूस और फ्रांस में हो चुकी थी। किंतु प्रशासनिक और राजनैतिक स्तर पर इसकी शुरूआत सन् 1951 में संयुक्त राष्ट्र महासभा द्वारा बहुमत के साथ महिलाओं के राजनैतिक अधिकारों का नियम पारित किए जाने से मानी जाती है। भारत में इसकी शुरूआत राजाराम मोहन राय द्वारा 1818 में सती प्रथा के विरोध से हुई है। राजा राममोहन राय सती प्रथा, बाल विवाह और बहुपत्नी प्रथा के विरूद्ध लड़े जिसके परिणाम स्वरूप 1829 में लार्ड विलियम वैटिक ने सती प्रथा को गैर कानूनी घोषित किया था। यद्यपि संस्कृत साहित्य में यत्र–तत्र नारी की तुलना देवी से की गयी है और उसे शक्ति सम्मन्न बताया गया है किंतु मनुस्मृति में ही स्त्री संबंधी अनेक द्वेषपूर्ण पितृसत्तात्मक वर्णन भी मिलते हैं। देखा जाए तो मध्ययुगीन और आधुनिक हिन्दी साहित्य में शब्दों के चयन व प्रयोग में अत्यधिक अंतर दृष्टिगत होता है। जैसे कि– स्त्री, औरत, महिला व नारी। अधुनातन हिन्दी साहित्य में कहानी व उपन्यास में आज स्त्री विमर्श न सिर्फ साहित्यिक विमर्श है बल्कि अनेक मायनो में वो एक सामाजिक, राजनैतिक आंदोलन व बौद्धिक सोच बन चुका है। अधुनातन हिंदी कथा साहित्य के साहित्यिक विमर्शों में अनुभव, स्वानुभूति,सहानुभूति, और नारी अस्मिता का सवाल भी विमर्शों में उठाया गया है। देखा जाए तो आदिवासी स्त्रियों ने स्वयं ही बहुत कम साहित्य हिन्दी में लिखा है, और दलित स्त्री विमर्श में भी हिन्दी स्त्री साहित्य की तुलना में कुछ कम ही लिखा गया है। भावात्मक स्तर पर नारी की स्थिति सभी अधुनातन साहित्यिक विमर्शों में समानता से चित्रित हुयी है। आर्थिक और सामाजिक स्तर पर दलित आदिवासी और अल्पसंख्यक स्त्री चेतना सामान्य स्त्री चेतना से कही पीछे छूटी हुई लगती है। जहां सामान्य स्त्री विर्मा में अंग्रेजी मिश्रित हिंदी का प्रयोग मिलता है वहीं अल्पसंख्यक स्त्री विमर्श में उर्दू शब्दावली का अधिक प्रयोग है और आदिवासी एवं दलित स्त्री कथा साहित्य में देशज शब्द भी प्रयोग हुए हैं। हिंदी के स्त्री विमर्श के पात्रों की सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति आमतौर पर निम्न वर्ग और मध्य वर्ग और कही–कहीं उच्च वर्ग के इर्द–गिर्द ही रहती है जिसमें जीवन का नकारात्मक दृष्टिकोण अधिक देखने को मिलता है। हिन्दी के स्त्री विमर्श में परिवार एवं समाज का महत्व आज भी व्यक्तिगत से अधिक है। जो भारतीय समाज और संस्कृति की अविच्छिन्न परंपरा 1990 का दशक हिन्दी साहित्य के लिए महत्वपूर्ण दशक है। साहित्य की अनेक विधाओं में कथा साहित्य को साहित्य की नयी विधा माना जाता है।[2] इसका प्रथम उदाहरण ग्रीक क्लासिक साहित्य में प्राप्त होता है। आधुनिक भारतीय साहित्य में इसका विकास बहुत बाद का है और हिन्दी में तो कथा साहित्य उन्नीसवी सदी और कुछ मामलों में बीसवी सदी के प्रारंभ में दृष्टिगत होता है। हिन्दी की प्रथम कहानी और प्रथम उपन्यास कौन–कौन से है विद्वानों की राय इस पर एक नहीं क्योंकि इस मामले में अभी तक कोई पद्धतिबद्ध शोध नहीं हुआ । अभी तक सामान्य रूप से यही माना जाता है कि सैयद ईशाअल्लाह खां द्वारा 1803 में लिखी गयी कहानी रानी केतकी की कहानी को हिंदी की प्रथम कहानी और 1870 में पंडित गौरीदत्त द्वारा लिखा गया उपन्यास देवरानी जेठानी की कहानी को हिन्दी का प्रथम उपन्यास माना जाता है। इससे यह स्पष्ट होता कि हिन्दी कथा साहित्य का इतिहास अभी इतना पुराना नहीं है जबकि स्त्री विमर्श, दलित विमर्श है।

आदिवासी विमर्श तो अभी सिर्फ़ तीन से ढाई दशक पुरानें है। जबकि हिन्दी का अल्पसंख्यक विमर्श एकदम नया है। देखा जाए तो नई कहानी आंदोलन के दौरान एक वर्ग उन कहानीकारों का सामने आया जो पूरी तरह से शहरी थे और शायद इसीलिए आत्मकेन्द्रित व्यक्तिवादी इन कहानीकारों के शिरोमणि निर्मल वर्मा हैं। इस कालावधि में उनके कच्चे और काला पानी 1983 सूखा तथा अन्य कहानियां 1995 तथा ग्यारह लंबी कहानियां सन् 2000 में प्रकाशित हुई हैं। ग्यारह लंबी कहानियों को उनका प्रतिनिधि कहानी संग्रह माना जा जा सकता है। निर्मल वर्मा की ही परंपरा को आगे बढ़ाते हैं कृष्ण बलदेव वैध उन्होंने 1951 से कहानी लिखना प्रारंभ किया और बीसवी सदी के अंत तक लिखते रहे। 1999 में उनकी संपूर्ण कहानियां मेंरा दुश्मन और रात की सैर दो खण्डों में प्रकाशित हुई जिनमें से कई कहानियां वर्तमान कालावधि की हैं जैसे पवन कुमारी का पहला सांप, मुरारि फूलवाला और भाम साब,1991 अमित 1996 अंधेरे में उपदेश, 1967 हमसफर,1995 आदि कहानियां। महीप सिंह ने सचेतन कहानी की व्याख्या में नयी कहानी की निषेधनात्मक प्रवृत्तियों का विरोध करते हुए जीवन को सकारात्मक सचेत भाव से जानने और जीने पर बल दिया। वर्तमान कालावधि में प्रकाशित धूप की उंगलियों के निशान, 1973 सहमें हुए, 1998 में दिल्ली कहा है। ऐसी जी है। 2002, इस प्रकार कहानी संग्रहों की कहानियों से उनकी सचेतक दृष्टि प्रमाणित होती है। अधुनातन हिंदी कहानियों में जो नयी स्त्री लेखिकाएं आयीं है। उनकी संख्या अब हजारों में हो गयी है। सक्रिय महिलाएं ममता कालिया, मृणाल पाण्डेय, मृदुला गर्ग, मंजुला भगत, चित्रा मुदगल, राजी सेठ, मणिका मोहिनी, प्रतिमा वर्मा, संधा अरोड़ा सूर्यबाला, मेंहरून्निसा परवेज, अलका सरावगी आदि। इनके अलावा और भी अनेक कहानी –लेखिका इस समय सक्रिय रही। इन लेखिकाओं की कहानियो में से कुछ सामान्य प्रवृत्तियां उभरकर सामने आयीं । इन सभी लेखिकाओं ने अपनी कहानियों में भारतीय परिवेश में अपनी मुक्ति के लिए छटपटाती नारी का चित्रण किया है। इस चित्रण में कुछ लेखिकाएं तो सचेत भाव से स्त्रीवादी है, जिसके कारण उनके स्त्री पात्र अकसर विद्रोह करते हैं। इस दृष्टि से मणिका माहिनी की कहानियां विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। उनके स्त्री पात्र बोल्ड हैं। वे परंपरागत

भारतीय नारी की तरह पति को अपनी अंतिम नियति मानकर झेलती नहीं है। बल्कि उसके साथ बराबरी का रिश्ता बनाकर रहना चाहती है। नई पीढ़ी की लेखिकाओं की दुनिया केवल स्त्री–पुरूष तक सीमित है ऐसा नहीं है। यह सच है कि कुछ लेखिकाओं की दुनिया बहुत सीमित है। लेकिन अधिकांश लेखिकाओं ने इस सीमा का अतिक्रमण किया है। नासिरा शर्मा की कहानियों की दुनिया अत्यंत विस्तृत है। उनकी कहानियों में हिंदू, मुसलमान, यहूदी आदि कई धर्मों से संबधित मनुष्यों का चित्रण किया गया है। उन्होंने अपनी कहानियों में ईरान के के जनसाारण की पीड़ा और संघर्ष, तानाशाही के विरूद्ध ईरानी जनता के विरोध, फिलिस्तीनियों के गुरिल्ला युद्ध , दूसरे विश्वयुद्व के दौरान यहूदियों के तनावपूर्ण पूर्ण जीवन तथा साम्प्रदायिकता आदि का चित्रण है। इनके चित्रण में संकीर्णता नहीं है। इस प्रकार अधुनातन हिंदी कहानी साहित्य विगत पच्चीस वर्षों से अत्यंत समृद्ध हुआ है। उसमें वस्तु और शिल्प दोनो के स्तर पर विविधता आयी है।

1990 के पश्चात हिन्दी उपन्यास और कहानी साहित्य पर दृष्टि करें तो जहां पुरूषों के साथ– साथ महिला लेखन की भागीदारी भी अत्यधिक रही। लेखन में महिला उपन्यासकारों की भागीदारी से तीव्र गति से परिर्वन आया। देखते ही देखते हिन्दी उपन्यास जगत में सर्वश्रेष्ठ उपन्यास महिलाओं की कलम से उभरने लगे।[3] शिवानी, कृष्णा अग्निहोत्री, मृदिला गर्ग, सुनीता जैन, मंजुल भगत, मन्नू भंडारी, निरूपमा सेवली, दीप्ति, खंडेलवाल, राजी सेठ, नासिरा शर्मा, बाला दुबे, शुभा वर्मा, मालती जोशी, कृष्णा सोबती, दिनेश दिनेश नंदिनेदिनी, डालमिया, उषा प्रियवंदा, चित्रा मुदगल, चंद्रकांता, अलका सारावगी गीतांजली जैसी महिला लेखिकाओं ने अपने लेखन से स्त्री–पुरूष लेखन संबंधों की नयी व्याख्या परिभाषित कर कथा जगत में क्रांतिकारी हलचल को जन्म दिया। इन उपन्यासों में मनोवैज्ञानिकता, सांकेतिकता, कथानक की संक्षिप्तता, कथानक का ह्रास, जैसे तत्व ने उपन्यास को प्रभावशाली बनाया। हिंदी उपन्यासों में अनेक महिला लेखिकाओं ने नारीवादी चेतना की व्याख्या प्रस्तुत कर उस चेतना का समाज में प्रचार–प्रसार करने का महत्वपूर्ण प्रयास किया। उनका यह प्रयास वर्तमान समय में भी जारी है। देखा जाए तो हिंदी कथा साहित्य में बीसवीं सदी के सत्तरवें दशक के मध्य के दौरान साहित्य में हिन्दी लेखिकाओं की रचनाएं संवेदना के स्तर पर उससे पूर्ववर्ती कथा साहित्य के आश्चर्यजनक रूप से भिन्न थी। और उसमें उससे पूर्व पुरूषों द्वारा लिखे गए कथा में लगभग वही अंतर झलकता था जो एक स्त्री और पुरूष की भावनात्मक और सोच के घरातल पर अनुभव की जाती है। वही देश के आर्थिक उदारीकरण, भूमंडलीकरण और आरक्षण जैसे मुद्यों से सामाजिक एवं राजनैतिक स्तर पर स्त्री विमर्श के पक्ष में एक गुणात्मक विचारधारा देखने को मिलती है। विगत कुछ वर्षों में सर्वाधिक कथा साहित्य स्त्री मुद्दों पर ही लिखा गया है। स्त्री समस्याओं पर लिखे गए उपन्यासों और कहानियों ने हिन्दी साहित्य जगत की जमीन को और अधिक उर्वरा किया है। उदारीकरण के पहले के कथा साहित्य में विशेष रूप से कहानी व उपन्यासों में परंपरा व रूढ़ियों के द्वंद में फंसी आधुनिक स्त्री की अपनी अस्मिता को ढूंढ़ने की तलाश का चित्रण अत्यधिक दिखाई देता है।[4] उसके बाद के कथा साहित्य में आत्म स्वीकृतियों का कथ्य शिल्प विकसित हुआ और इसे खुले मन से स्वीकार किया गया। बदलते परिवेश के साथ रिश्तों के स्वरूप में भी परिवर्तन दृष्टिगत हो रहा है। आधुनिक परिवेश के साथ –साथ सामाजिक व मानवीय मूल्य में तीव्रगति से परिवर्तन हो रहे हैं, ये परिवर्तनो की झलक हिन्दी कथा साहित्य में में स्पष्ट दिखायी दे रही है जिसमें पति–पत्नी के मध्य किसी तीसरे की उपस्थिति, अनमेंल विवाह, विवाह एक समझौता कथा साहित्य के मुख्य विषय बन गये। इस तरह का कथा साहित्य मानवीय संबधों के बदलाव को दर्शाता है। एक तरफ स्त्री का अकेले स्वावलंबी जीवन बिताने का साहस करना और दूसरी तरफ कुछ का बिना सोचे समझे अपना सर्वस्व दांव पर लगाना भी पारिवारिक विघटन, स्त्री का आर्थिक स्वावलंबन और दफ्तर की नौकरी से लेकर इंजीनियर, डाक्टर, और राजनैतिक नेतृत्व तक का वर्तमान हिन्दी कथा साहित्य विमर्श में विभिन्न पहलुओं की झलक दिखायी देती है। सन् 1990 के पश्चात् भारत में अगर सबसे अधिक परास्त और निराश हुआ हुआ है तो वो आदिवासी, दलित और स्त्री। 1990 के दशक के बाद इन सभी विमर्शों को केन्द्र पर रखकर हिन्दी उपन्यास लिखे जा रहे हैं। 5 सन् 1990 के दशक के शुरूआती दौर में भूमंडलीकरण का दौर भी प्रारंभ हुआ। पूंजीवाद और साम्राज्यवाद का उत्कर्ष। जब वर्तमान समय में आर्थिक और राजनैतिक नेतृत्व व भूमंडलीकरण के समक्ष समर्पण की नीति पर चल रहा हो तो उस समय प्रतिरोधी संस्कृति साहित्य से ही आशा की जा सकती है। इन्हीं से प्रभावित हिन्दी उपन्यासों में 1990 के दशक से लेकर 1916 तक के उपन्यास भुमंडलीकरण से ही प्रभावित हो लिखे जा रहे हैं। 1991 के बाद भारत में भूमंडलीकरण व उदारीकरण का प्रभाव उपन्यासों में स्पष्ट दिखायी देता है। सन् 1993 में 'मुझे चांद चाहिए' सुरेन्द्र वर्मा के उपन्यास में यौन मुक्ति की झलक दृष्टिगत होती है। उपन्यास की नायिका सिलबिल कस्बे के प्राइमरी स्कूल के साधारण अध्यापक की पुत्री है। उसके समक्ष असीम महत्वाकांक्षाओं और सपनों की कभी न समाप्त होने वाली श्रृंखला सजायी जाती है जिसे पाने के लिए वह मचल उठती है। असंभव से आगे बढ़ते रहने की लालसा ने सिलबिल उर्फ वर्षा वशिष्ठ को अकेला कर देती है। सिलबिल एक प्रतीक है उन लड़कियों के लिए जो सबकुछ पा लेने के चक्कर में अपना सर्वस्य न्यौछावर कर देती हैं। पूंजी इतनी चंचल है वह किसी संबंध को ठहरने नहीं देती। सिलबिल अपनी उपलब्धियों और जीवन में संबंध व सामंजस्य नहीं बैठा पाती। महिला लेंखन में 1990 के दशक के दौर में स्त्री को केन्द्र में रखकर चित्रा मुदगल का उपन्यास 'आंवा' को देखा जा सकता है। 1999 में लिखा गया ये उपन्यास आज के दौर का एक सशक्त उपन्यास है। आज के दौर में पूंजी की चकाचौंध किसी को भी गुलाम बना सकती है। वह चाहे मुंबई का के टेड यूनियन के नेंता की पुत्री नमिता पाण्डेय हो या कोई और स्त्री मुक्ति का प्रश्न देह मुक्ति के कुछ

हद तक रेडयूस हो जाता है। बाजार मुक्ति का झांसा देता है। शायद कुछ हद तक मुक्त भी करता है, लेकिन उससे भी अधिक वह अपने संजाल में फंसाता भी है। आधुनिककाल के भारतीय समाज में स्त्री–पुरूष दोनो को नई–नई स्थितियों में पड़ना पड़ता है, जो उनके संस्कारों के लिए चुनौती बन जाता है। यही स्थिति आवां की नमिता की है। पिता के लकवा के कारण उसने टाईपिंग–शार्टहैंड सीखी, बी ए पास नमिता पर परिवार का दायित्व आ पड़ता है और वो विभिन्न स्थितियों से गुजर कर माडल बनती है[6] और अविवाहित होने पर भी आभूषणों के बड़े व्यापारी संजय कनोई के बच्चे को अपने गर्भ में धारण करती है। दुर्घटनावश गर्भपात और उस पर संजय की उग्र प्रतिक्रिया और अपने मोहभंग के बाद वह लौटती है और मजदूर आंदोलन से जुड़ती है। आंवा में मजदूर आंदोलन का चित्रण भी है। पर प्रस्तुत उपन्यास में काम संबंध पर ध्यान अधिक केन्दित है। देखा जाए तो आवां उपन्यास में विवाहेत्तर काम संबध स्थापित करने वाले स्त्री पात्र अपराध बोध से ग्रस्त नहीं होते। ये देह धर्म को स्वीकार करते हैं। ये आज की अधुनातन हिन्दी उपन्यासों, स्त्री लेखिकाओं की सोच में होने वाला परिवर्तन है। आधुनिकता की प्रक्रिया ने शहरों ही नहीं गावों को भी प्रभावित किया है। पर ये धीमी गति से है। इनका चित्रण भी कहीं–कहीं आधुनिक उपन्यासों में देखा जा सकता है। बदलते समय के बदलते परिवेश में ममता कालिया के उपन्यास एक पत्नी के नोट्स, मृदुला गर्ग कठगुलाब 1996 में विभिन्न समाजों राष्ट्रों, वर्गों की नारियों से साक्षात्कार करवाता है। वह उस सत्य को उदघाटित करता है कि इतिहास में भी औरत दूसरे दर्जे की नागरिक रही है। राजी सेठ का 1995 में लिखा गया उपन्यास निष्कवच उन्होंने इसमें आधुनिक नारी को दो रूपों में खांटी और निष्कवच के रूप प्रस्तुत करती है। राजी सेठ स्वीकृत और परंपरागत मूल्यों पर पुनर्विचार के लिए उकसाती है। नासिरा शर्मा के उपन्यास शाल्मली और जिंदा मुहावरे 1993 में आया इन दोनो उपन्यासों में उन्होंने व्यापक मानवीय संदर्भों को उठाती और चिन्हित करती है। मेंत्रीय पुष्पा का उपन्यास बेतवा बहती रहती है, 1994 का ये उपन्यास बुंदेलखंड की पृष्ठभूमि में बेतवा के कछारी क्षेत्र में साधारण स्त्री के उत्पीड़न और यातना के संदर्भों को उदघाटित करता है। उसी का विस्तार इदन्म में होता है। स्त्री की मुक्ति का सवाल पूरे समाज की मुक्ति से जुड़ा है, वह इस सत्य को कभी ओझल नहीं होने देती। अधुनातन हिन्दी उपन्यासों में अनेक मुद्दों को लेकर उपन्यास लिखे जा रहे हैं। आदिवासी विमर्श विस्थापन, दलित विमर्श, स्त्री विमर्श, अल्पसंख्यक विमर्श, धार्मिक और साम्प्रदायिकता, संकीर्णता, साम्प्रदायिकता को जहां एक दूसरे खास तरह की आक्रामकता मिलती है और अल्पसंख्यक इसके खास रूप से शिकार बनते हैं। आदिवासी विमर्श, और विस्थापन को चित्रित करने वाले उपन्यासों में प्रमुख हैं–हिडिंब, एस आर हरनोट, ग्लोबल गांव के देवता, गायब होता देश, रणेन्द्र का जहां जंगल शुरू होता है। संजीव का जहां बांस फूलते है, श्री प्रकाश मिश्र का साम्प्रदायिकता की समस्या पर केन्द्रित उपन्यास है। हमारा शहर, उस बरस की गीतांलि श्री, कैसी आग लगाई, बरंखा लगाई, असगर वसाहत, नागफनी के जंगल में, कितने पाकिस्तान, कमलेश्वर का आखिरी कलाम, दूधनाथ सिंह का जनजीवन में विकृति, इन उपन्यासों के अलावा प्रतिरोध को उभारने वाले उपन्यास भी लिखे गए हैं। जिनमें प्रमुख हैं– विश्रामपुर का संत, श्री लाल शुक्ल का विसर्जन, राजू शर्मा का देश निकाला, धीरेन्द्र अस्थाना का मुन्नी मोबाईल, ये दमित अस्मिता पर केन्द्रित उपन्यास हैं। थमेंगा नहीं विद्रोह, उमराव सिंह का लिखा उपन्यास, उधर के लोग, अजय नवरिया का उपन्यास, जख्म हमारे मुक्ति पर्व मोहनदास व नैमिशराय के उपन्यास आज का यथार्थ प्रस्तुत करते हैं। इस प्रकार 1990 से लेकर 2016 तक के उपन्यासों पर दृष्टि की जाए तो उनमें आधुनिकता, वैश्वीकरण, भूमंडलीकरण का प्रभाव स्पष्ट रूप से नजर आता है। इन उपन्यासों में बाजार की समग्र संरचना, सत्ता केन्द्र और उसके तिलस्म की भयावहता और कुरूपता को नए किस्म के यथार्थ को उसकी पूरी पेचीदगी के साथ हिन्दी उपन्यासों में प्रस्तुत करते हुए उसके विरूद्ध जनप्रतिरोध और विकल्प को रखने की कोशिश की गयी है। देखा जाए तो राकेश कुमार सिंह का पठार का कोहरा जो 2003 में प्रकाशित हुआ। इस उपन्यास में झारखंड के जनजातीय जीवन पर लिखा गया उपन्यास है।[7] उसमें उन्होंने शोषण, उत्पीड़न और अत्याचार के अनेक हथकंडों के चुंगल में फंसे संथाल में मुंडा आदिवासियों की स्थिति को उजागर किया गया है। इस उपन्यास में शोषण, उत्पीडन और अत्याचार के नए–नए दुष्चक्रों कें जाल में फंसे आदिवासी मानस को जागुत करते हुए उसमें अस्मिता और चेतना को जगाने वाले एक संवेदनशील और दुर्दम्य आत्मविश्वास, इच्छा शक्ति वाले नायक पेशे से अध्यापक संजीव शान्याल की संघर्ष गाथा है। साथ ही हताशा से घिरी एक आदिवासी लोकजीवन घटाओं का सजीव चित्रण करते हुए सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक, आर्थिक एवं राजनैतिक, जीवन को स्पर्श करने का प्रयास किया है। महिला लेखन में शरद सिंह का पिछले पन्ने की औरतें ये उपन्यास सन् 2005 में प्रकाशित हुआ। इस उपन्यास में उन्होंने सदियों से उपेक्षित, वंचित, उत्पीड़ित एवं आर्थिक बदहाली का जीवन जी रही बेड़िया समाज की औरतों के जीवन सत्य को उन्होंने उजागर कर अमिट छाप छोड़ी है। इसी प्रकार दिव्या माथुर का उपन्यास शाम भर बातें जो सन् 2005 में आया। इस उपन्यास में उन्होंने दुनिाया में भूमंडलीकरण के समय आधुनिकता ने किस प्रकार से पार्टियों का चलन एक सभ्यता का रूप ले लिया है, उसे उन्होने अपने उपन्यास में अत्यंत सूक्ष्म तरीके से प्रस्तुत किया है। इस उपन्यास ये बताने का प्रयास है कि आज की आधुनिक पार्टी में महिलाओं का किस प्रकार से शोषण बड़े स्तर पर होता है। 1990 से 1916 का ये दशक उपन्यास के लिए अत्यंत परिपक्त दशक के रूप में जाना जा सकता है। आज का अधुनातन साहित्य समाज का यथार्थ है, इस यथार्थ को महिला और पुरूष लेखकों ने अपने उपन्यासों में बखूबी चित्रित किया है। मानव समाज के प्रत्येक विमर्श को अपने हिन्दी साहित्य में महत्वपूर्ण स्थान दिया जा रहा है। ये महिला और पुरूष लेखकों की खुबी है। विद्याभूषण द्वारा लिखा गया सन् 2015 में लौटना नहीं इस उपन्यास

में समय और समाज को समझने का प्रयास है। इसमें यह उल्लेख है कि एक ओर जहां देश विकास और सफलता की ओर अग्रसर है, वह विश्वशक्ति बनने की ओर है, वहीं नारियों पर अत्याचार, शोषण होना चिंतन का विषय है। आज जहां हम आधुनिकता की बात कर रहे हैं वहां रीति, परम्पराओं के नाम पर शोषण होना वर्तमान समय की सबसे बड़ी विडंबना है। लौटना नहीं नामक इस उपन्यास में लेखक ने आज के दौर की महिलाओं के जीवन की विषमताओं , विडंबनाओं, और जटिलताओं को तो व्यक्त करता है बल्कि उन्हें अपनी स्वतंत्रता और संघर्ष के लिए प्रेरित करता है। आज के दौर के उपन्यासों में नारी विमर्श, दलित विमर्श, को केन्द्र में रखकर उपन्यास लिखे जा रहे हैं। उसमें वैश्वीकरण का प्रभाव है। वास्तव में समाज साहित्य का वो दर्पण है, जो समय के साथ व समय के अनुसार समाज की तस्वीर प्रस्तुत करता है। 1990 के दषक में लिखे गये उपन्यास साहित्य में हमें वही तस्वीर दृष्टिगत हो रही है।[8]

उद्देश्य

अधुनातन हिंदी कथा साहित्य और उपन्यास साहित्य आज के दौर का परिपक्व साहित्य है। आज के पुरूष और स्त्री लेखक ने अपने साहित्य के माध्यम से स्त्री को सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक, शारीरिक शोषण से मुक्ति का मार्ग दिखाकर स्वतंत्र अस्तित्व निर्मित करने का प्रोत्साहन दिया है।

निष्कर्ष

निष्कर्ष यह है का अधुनातन हिंदी कथा साहित्य और उपन्यास साहित्य आज के दौर का परिपक्त साहित्य है। अधुनातन कथा साहित्य के लगभग सभी स्त्री विमर्शों के केन्द्र में स्त्री अस्मिता, स्वानुभूति, सहानुभूति, पितृसत्तात्मक समाज, घर्म, जाति,वर्ग प्रेम, घृणा, पश्चाताप, स्त्री का संघर्ष, विद्रोह आदि मुंद्दे उठाये गये हैं और इनके माध्यम से ही स्त्री जीवन के विविध पक्ष उजागर हुए हैं। सारे विमर्श के केन्द्र में मुख्य चिंता यही है कि आखिर स्त्री का वजूद उसका अस्तित्व क्या है। क्या कोई रास्ता है जिस पर वह आजादी से चल सके। स्त्रियों के संघर्ष उनके उत्पीड़न, उनकी छटपटाहट से साहित्य जगत में भी हलचल हो रही है। इन मुद्दों में स्त्री होने का अहसास और उसकी पहचान का सवाल नारियों के मन को कचोटता रहता है। साहित्य के माध्यम से वह सामाजिक काल्पनिकताओं से बाहर आने के लिए छटपटा रही हैं। अधुनातन हिन्दी कथा साहित्य में स्त्री के संघर्ष , विद्रोह और पश्चाताप के भाव का रंग और अधिक गहराता हुआ दिखाई देता है। इस प्रकार 1990 के दशक के बाद का हिन्दी कथा साहित्य के विषय परंपरागत से आधुनिक, गृहणी से कामकाजी स्त्री क्षेत्र से राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय बन गये है। साम्प्रदायिकता, उदारीकरण, आतंकवाद, विद्रोह, जाति और वर्ग, महिलाओं, बच्चों, वृद्धों आदि की स्थिति पर भी खुलकर लिखा जा रहा है। स्त्री विमर्श में नारी की सफलता की विवेचना व्यष्टि के लिए न होकर समष्टि के लिए है। देखा जाय तो अधुनातन हिन्दी कथा साहित्य की तरह हिन्दी उपन्यास ने भी अपनी अब तक की लगभग सवा सौ वर्ष की यात्रा में आधुनिकता की प्रक्रिया को पूरी तरह आत्मसात किया है और उसे विवेक पुर्ण अभिव्यक्ति दी है। 1990 के दशक में भारतीय जीवन में लौकिक स्तर पर जो कुछ घटित हुआ उसे हिन्दी उपन्यासकार ने संवेदना और बुद्धि दोनों स्तर पर ग्रहण किया है। आज के जो लेखक हैं उनके लेखन में भूमंडलीकरण का प्रभाव दिख रहा है। सबसे बड़ी बात आज का साहित्य समय और समाज का सच है और उससे भी बड़ी बात अधुनातन हिंदी साहित्य में महिलाओं की अभिव्यक्ति का साहस बढ़ा है। इसलिए पहले जो भारतीय नारी लेखन के क्षेत्र में गिनी चुनी होती थीं आज उनकी संख्या हजारों में है, पहले भी महिलाओं में अभिव्यक्ति की आकांक्षा विद्यमान थी पर लेखन का साधन और साहस उनके पास न होने के कारण उनकी तमाम अभिव्यक्ति मौखिक साहित्य या लोकगीतों आदि के रूप में दिखाई देता था। कल की गिनी चुनी नारी साहित्यकार आज के अधुनातन साहित्य में बड़े बेबाकी से अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त कर रहीं हैं। कहानी, उपन्यास में नारी लेखन के जागरूक और संवेदनशील सार्थक हस्तक्षेप करने वाले विविध आयाम आज दिखाई दे रहे हैं। वरिष्ठ पीढ़ी की लेखिकाओं में जहाँ उनके लेखन में मध्यमवर्गीय निम्न मध्यवर्गीय समाज के जिन सरोकारों को सीमित स्थान दिया था वहीं आज की लेखिकाओं में विस्तार पा रहा है उनके लेखन में आत्मविश्वास की पैनी धार और शिल्प में भी परिपक्तता आई है।[9]

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. *मनोहर श्याम जोशी –21 वी सदी, वाणी प्रकाशन दिल्ली, 2009, पृष्ठ– 48*
2. *राजेन्द्र यादव–हंस पत्रिका, जून 2007, नई दिल्ली, पृष्ठ–26*
3. *अलका सरावगी–कली–कथाः वाया बाइपास आधार प्रकाषन, पंचकूला (हरियाणा) तीसरा संस्करण, 2007 पृष्ठ 60*
4. *डॉ उषा यादव – हिन्दी की महिला उपन्यासकारों में मानवीय संवेदना, प्रकाशक, तक्षशिला नई दिल्ली पृष्ठ 09,*
5. *पुष्पपाल सिंह– भूमंडलीकरण और हिन्दी उपन्यास, राधाकृष्णन प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण 2012, पृष्ठ 45*
6. *पुष्पपाल सिंह–21वीं सदी का हिंदी उपन्यास, राधाकृष्णन प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण 2015, पृष्ठ, 68*
7. *चित्रा मुदगल–आंवा, सामायिक प्रकाशन, नई दिल्ली, छठा संस्करण, 2010, पृष्ठ 27,*
8. *जनसत्ता समाचार पत्र नई दिल्ली पृष्ठ 06 3 जून 2008*
9. *स्वयं का सर्वेक्षण एवं निष्कर्ष।*